वह कौन था

अनुराग शर्मा

वह कौन था

"मोहन नहीं रहा!"

राजेश का फोन था। वह हमेशा कम शब्दों में बात करता है, वैसे ही बिना किसी भूमिका के बोला। मोहन मेरा और राजेश का सहकर्मी था। राजेश को हिंदी बहुत अच्छी तरह नहीं आती है। इसलिए मुझे लगा कि शायद वह मोहन के नौकरी छोड़ने

की बात कर रहा है। यह तो मुझे पहले से ही पता था कि मोहन यह नौकरी छोड़कर एक विदेशी बैंक में चला गया था।

"वह नौकरी छोड़कर दिल्ली गया है, मुझे पता है" मैंने कहा।

"नहीं, मोहन इस नो मोर अलाइव। ही इज डैड। उसको आतंकवादियों ने मार दिया।"

"दिल्ली में कौन से आतंकवादी हैं?" मैंने पूछा। दिल राजेश की बात पर यकीन करने को तैयार ही न था।

"उसको कश्मीर में मारा है, मैं लंच में तेरे दफ्तर आ रहा हूँ, सब बताता हूँ" राजेश ने मानो मेरे अविश्वास को पढ़ लिया था।

मेरा दिल राजेश की बात मानने को बिल्कुल तैयार नहीं था। वैसे भी मोहन के कश्मीर जाने की कोई वजह नहीं थी। कुछ ही दिन पहले तो वह अपनी नई नौकरी के लिए दिल्ली गया था - इतनी जल्दी यह सब। और फिर भगवान भी तो हैं। क्या वह कुछ नहीं देखते? राजेश को जरूर कोई गलतफहमी हुई है।

हम तीनों ने ही यह नौकरी सौ के लगभग युवाओं के साथ बंगलौर में एक ही दिन शुरू की थी। लगभग एक महीने का प्रशिक्षण लिया और फिर उसके बाद सब देश भर में अलग-अलग शाखाओं में बिखर गए। मोहन को पहली बार वहीं देखा था। टी ब्रेक में और कभी उसके बिना भी वह और कुछ और लड़के धूम्रपान के लिए कक्ष से बाहर आकर खड़े हो जाते थे। एक दिन मैंने उसे हिम्मिजंग्ल्यान को समझाते हुए सुना, "सिगरेट पीने से लड़कियों पर बहुत अच्छा इंप्रेशन पड़ता है।" उसके विचार, दोस्त, प्राथमिकताएँ, पृष्ठभूमि, सभी कुछ मुझसे एकदम मुख्तलिफ थे। हम दोनों में दोस्ती होने की कोई संभावना नहीं थी। हाँ, दुआ-सलाम जरूर होती थी, वह तो सबसे ही होती थी।

प्रशिक्षण के दौरान जिन दो-तीन लोगों से मेरी मित्रता हुई, राजेश उनमें से एक था। उम्र में मुझसे काफी बड़े राजेश को इस नौकरी में आरक्षण का लाभ मिला था वरना शायद वह आयु सीमा से बाहर होता। मैं उस बैच का सबसे छोटा अधिकारी था। कुछ ही दिनों के साथ में मैंने राजेश की प्राकृतिक सदाशयता को पहचान लिया और हम लोग मित्र बन गए।

जान-पहचान बढ़ने पर पता लगा कि वह झारखंड के आदिवासी अंचल से था, मिशनरी स्कूलों में पढ़ा था। जनसेवा का जज्बा बचपन से ही दिल में था इसलिए

पादरी बनकर दबे-कुचले आदिवासियों की सेवा को ही लक्ष्य बनाकर एक धार्मिक संस्था से जुड़ गया। उसका हर कदम पादरी बनने की दिशा में ही चला। पश्चिमी अध्यात्म, मसीही चंगाई आदि में शिक्षा चलती रही। अविवाहित रहने का संकल्प लिया। अपने बैंक खाते बंद करके कोई निजी धन न रखने की चर्च की बंदिश को माना। सारा भारत घूमा और समय आने पर उसने आदिवासी क्षेत्रों में चल रहे मिशनरी स्कूलों में प्राचार्य का काम भी किया। वह अपनी संस्था में जितना अधिक आगे बढ़ता गया, उसका परोपकारी मन उतना ही घुटने लगा। अपने देशी और विदेशी वरिष्ठ अधिकारियों के मन, वचन और कर्म में उसे बड़े विरोधाभास दिखने लगे। उसके किसी भी सुझाव को माना नहीं जाता था। यहाँ तक कि उसकी कई बातों को तो विधर्मी का ठप्पा लगाने की कोशिश भी की गई। बिना बैंक-खाते वाले लोगों को उसने दान के धन पर हर तरह का भोग-विलास करते पाया और अविवाहित रहने का प्रण करने वालों को कामना के वशीभूत होते भी देखा।

जनोत्थान की उसकी जिद ने संस्था के अंदर न सिर्फ अलोकप्रिय ही बनाया बल्कि बाद के दिनों में चर्च के लेखांकन में हुई कई छेड़छाड़ उस पर थोपी गई। जब पुराने अभिलेखागार में शोर्ट-सर्किट से लगी मामूली सी आग का जिम्मा भी उस पर लादकर पुलिस में रपट लिखाई गई तो उसने उस संस्था से बाहर आने का मन बना लिया। नौकरी के लिए उम्र निकल चुकी थी और अपने नाम से जेब में एक धेला भी न था। ऐसे में उसने अपनी शिक्षा और आदिवासी प्रमाणपत्र का उपयोग कर के यह परीक्षा दी और चुनकर हम सबके साथ प्रशिक्षण के लिए आ गया।

राजेश जब राजनगर के मिशन हाईस्कूल का प्राचार्य था तब मोहन भी उसी स्कूल में पढ़ता था। तब से ही वे एक-दूसरे को जानते थे। बंगलौर में वे दोनों एक ही होटल में रुके थे और सुबह शाम प्रशिक्षण केंद्र व होटल के बीच एक साथ ही आते-जाते थे। स्वभाव में एकदम विपरीत होते हुए भी वे दोनों एक-दूसरे से बहुत घुले-मिले थे।

इस प्रशिक्षण के बाद मुझे आरा में पोस्टिंग मिली थी। बाकी सब साथी भी देश भर में बिखरी शाखाओं में बिखर जाने वाले थे। राजेश चेन्नई जा रहा था। वह तो कहीं भी रहकर खुश था। ज्यादातर लोगों को अपने मन मुताबिक पोस्टिंग मिल गई थी। सभी लड़कियों को अपने-अपने गृह नगर में ही रहने को मिला था। यह पोस्टिंग्स सिर्फ चार महीने के लिए थी। इनमें हमें कोई सरकारी निवास नहीं मिलने वाला था। अलबत्ता किराए के नाम पर हर महीने एकमुश्त तय रकम जरूर मिलनी थी। छोटे नगरों में मिलने वाली रकम किराए के लिए काफी थी। मगर आरा जैसे मध्यम आकार के नगर

में न तो चार महीने के लिए कोई घर मिलता और न ही किसी घर का किराया उस रकम में पूरा पड़ने वाला था।

राजेश ने बताया कि मोहन को भी आरा में ही एक और ब्रांच में जाना है। मोहन - और कुछ हद तक राजेश भी - चाहता था कि मैं और मोहन किसी ठीक-ठाक से होटल में साथ ही रहें। दोनों का मासिक किराया मिलाकर इतना पैसा बन जाएगा कि किसी रहने लायक होटल में एक सूइट मिल सके। मैं मोहन जैसे लड़के के साथ रह सकूँगा इसमें मुझे शक था। शराब और मांसाहार उसकी दैनिक खुराक में शामिल थे और मैं ठहरा शुद्ध शाकाहारी। वह चेन-स्मोकर और मैं टी-टोटलर। मगर वह तो चिपक सा ही गया। राजेश ने हम दोनों को साथ बैठाकर समझाया कि नए शहर में साथ रहना हम दोनों के ही हित में है और विपरीत आदतें होने के कारण हम लोगों को एक-दूसरे के अनुभव से बहुत कुछ सीखने की गुंजाइश भी है। वैसे भी बैंकिंग एक ऐसा व्यवसाय हैं जिसमें न तो किसी का भरोसा ही किया जा सकता है और न ही भरोसे के बिना काम चल सकता है।

राजेश की बात हम दोनों की मगज में धँस गई। हमने एक-दूसरे को बर्दाश्त करने का वायदा किया और प्रशिक्षण पूरा होने पर एक ही रेल से एक साथ आरा पहुँच गए। मोहन ने हमारे साथ के एक और प्रशिक्षु के द्वारा किसी से पहले से ही कहकर एक होटल में एक कमरा भी बुक कर लिया था। शुरू में तो मुझे थोड़ी कठिनाई हुई। फिर धीरे-धीरे सब ठीक हो गया। कुछ ही दिनों में मैंने देखा कि मोहन दोस्त बनाने में काफी माहिर था। थोड़े ही दिनों में हम दोनों शहर में काफी लोकप्रिय हो गए।

आरा में हम दोनों ने एक-दूसरे को बेहतर पहचाना। मुझे पता लगा कि वह बहुत सा पैसा इसलिए कमाना चाहता है ताकि जीवन भर अभावों में रहे उसके बूढ़े माता-पिता अपना शेष जीवन सुख से गुजार सकें। वह जीवन में सफलता इसलिए पाना चाहता है ताकि अपने बचपन की मित्र अनिता के सामने शादी का प्रस्ताव रख सके। मैंने पाया कि शोर-शराबे के शौकीन उस कुछ-कुछ उच्छृंखल लड़के के भी अपने बहुत से ख्वाब हैं। तथाकथित फैशन और आधुनिकता के पीछे भागने वाला मोहन भी अपने से ज्यादा अपने माँ-बाप के लिए जीना चाहता था। वह यह भी चाहता था कि अपनी छोटी बहन को अच्छी तरह पढ़ा-लिखा सके।

मेरी अगली पोस्टिंग लखनऊ में थी। मैं खुश था कि राजेश भी वहीं पास के एक कस्बे में आ रहा था। इसी बीच में मोहन को सिटीबैंक से नौकरी का बुलावा आया और उसने अपना त्यागपत्र दे दिया। वह कहता था कि वह सिटीबैंक में भी रुकने वाला नहीं है।

जो कंपनी भी उसे ज्यादा पैसा देती रहेगी, वह वहाँ जाता रहेगा - सरकारी, लोक, निजी, छोटी, बड़ी, देशी, विदेशी, चाहे जैसा भी उपक्रम हो। जिस दिन मैं आरा से लखनऊ के लिए चला, उससे दो हफ्ते पहले ही वह अपनी नई नौकरी के लिए दिल्ली जा चुका था। उस जमाने में सेल फोन का प्रचलन नहीं था सो हम लोग ज्यादा संपर्क में नहीं रहे।

लखनऊ में राजेश से अक्सर मुलाकात होती रहती थी। फोन पर तो लगभग रोजाना ही बात होती थी। आज जब मैंने फोन पर उसके "हेल्लो" सुनी तो इसे रोजाना का आम फोन काल ही समझा। क्या पता था कि वह मोहन के बारे इतनी बड़ी खबर सुनाने वाला था। आरा के चार महीने के प्रवास के दौरान मैंने मोहन नाम के उस ऊपर से शोर-शराबा करते रहने वाले लड़के को नजदीक से देखा था। कुछ सहनशक्ति तो मैंने भी विकसित की थी और शायद उसकी प्रकृति में भी मेरे साथ रहने से कुछ परिवर्तन आए थे।

राजेश के चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। उसने आते ही चुपचाप एक अँग्रेजी समाचार पत्र की कतरन मेरे सामने रख दी। कतरन में मोहन के जाने की खबर को विस्तार से दिया हुआ था। श्रीनगर के एक बाग में कुछ आतंकवादियों ने दिनदहाड़े राजनगर के मूल निवासी एक सरकारी अफसर श्रीमान मोहन को पकड़कर उसका नाम पूछा जब नाम से समझ नहीं आया तो उसका धर्म पूछा। जैसे ही हमलावरों को यह तसल्ली हो गई कि वह मुसलमान नहीं है तब पहले तो उन्होंने उसे इतना पीटा कि वह अपने होश खो बैठा और उसके बाद उसे पहले ही खदेड़ दिए गए विस्थापित पंडितों से खाली कराए गए एक लकड़ी के मकान में डालकर जिंदा ही जला दिया। दो दिन बाद किसी स्थानीय व्यक्ति ने गुमनाम फोनकर के एक मकान में आग लगने की सूचना दी। बाद में सारा किस्सा खुला और यह खबर अखबारों की सुर्खी बनी।

हे भगवान, एक मासूम व्यक्ति का इतना भयावह अंत! सिर्फ इसलिए क्योंकि वह आतंकवादियों के धर्म का नहीं था। यह स्वीकार कर पाना भी असंभव था कि आज के सभ्य समाज में भी जाहिलिया युग के हैवान न सिर्फ छुट्टे घूम रहे हैं बल्कि जिसे चाहें, जब चाहें, अपनी हैवानियत का निशाना भी बना सकते हैं।

जब मैंने राजेश को याद दिलाया कि मोहन तो सिटीबैंक में था तब उसने बताया कि वह दिल्ली छोड़कर एक सरकारी नौकरी में श्रीनगर चला गया था। जब मैंने यह शंका व्यक्त की कि राजनगर से उस नाम का कोई और व्यक्ति भी तो हो सकता है जो भारत सरकार की नौकरी में हो तो राजेश ने बताया कि वह राजनगर के आदिवासी

ईसाई समुदाय को बहुत अच्छी तरह से जानता है। और यह व्यक्ति हमारे मोहन के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

उन दिनों मैंने विनोबा भावे के गीता प्रवचन पढ़ना शुरू किया था। मैं घर से दफ्तर आते-जाते रोजाना ही वह पुस्तक पढ़ता था। दो दिन पहले ही पुस्तक पूरी हुई थी और उस समय मेरी मेज पर रखी थी। मैंने उस कतरन को उसी पुस्तक में रख दिया। शाम को मैं पुस्तक अपने साथ घर ले गया। घर जाकर मैंने उस कतरन को कितनी बार पढ़ा, मैं बता नहीं सकता। मैंने मोहन पर पड़ने वाले हर प्रहार को अपने ऊपर महसूस किया। हाथ-पाँव तोडे गए इनसान को जिंदा जला दिया जाना कैसे सहन हुआ होगा, मैं सोच भी नहीं पाता था। ईश्वर अपनी संतानों पर ऐसे अत्याचार क्यों होने देता है, यह बात समझ ही न आती थी। बार-बार ईश्वर के अस्तित्व को ही सिरे से नकारने को जी करता था।

आपको शायद सुनने में विरोधाभास सा लगे मगर मुझे ईश्वर के प्रति क्षोभ से मुक्ति भी ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था से ही मिली। धीरे-धीरे समय बीता। मैं नौकरी में स्थायी हो गया। दिल्ली में स्थानांतरण हुआ, शादी हुई, परिवार बना। मोहन की बात ध्यान से उतर चुकी थी कि एक दिन वही किताब पत्नी के हाथ लगी। कतरन पढ़कर वह सहम सी गई। फिर पूछा तो मैंने सारी बात बतायी। तब तक शायद मैंने कभी भी उससे मोहन के बारे में कोई बात नहीं की थी। बहुत देर तक हम दोनों चुपचाप रहे फिर मैंने कतरन उसके हाथ से लेकर वापस उसी किताब में रख दी और किताब को अपनी जगह पर वापस पहुँच दिया।

अगले दिन मैं अपने एक निकटस्थ सहकर्मी प्रशांत को काम के सिलसिले में कुछ बात बताकर हटा ही था कि मैंने जो देखा उससे मेरी आँखें फटी की फटी रह गई।

यह जरूर सपना ही होगा। अगर हकीकत थी तो यह तय है कि सच्चे दिल से माँगी गई दुआओं में सचमुच बड़ा असर होता है। मेरे सामने एक हट्टा-कट्टा आदमी चला आ रहा था जो मोहन का आभास दिला रहा था। ऐसा लगता था जैसे कि किसी ने मोहन को हवा भरकर फुला दिया हो। मुझे देखकर वह खुशी के मारे जोर से चिल्लाया, "अरे मेरे चुनमुन, तू तो आज भी वैसा ही है मैन।"

"अरे, मोहन जिंदा है क्या?" मेरा मुँह आश्चर्य से खुला का खुला रह गया। मैं तो हमेशा ही भगवान से यह मनाता था कि उसके मरने की खबर झूठ हो। फिर भी उसे सामने देखकर मुझे अचंभा तो बहुत हुआ। शायद यह मेरा भ्रम ही हो मगर वह पहले से काफी

फर्क लग रहा था। इतने दिनों में वह न सिर्फ मोटा हुआ था बल्कि मुझे तो वह पहले से कुछ लंबा भी लग रहा था।

मेरा दिमाग कुछ समझ नहीं पा रहा था। रंग-रूप, चटख वेश-भूषा, लाउड हाव-भाव और जोर-जोर से बोलना, यह व्यक्ति मोहन न हो यह हो ही नहीं सकता था। क्या भगवान ने मेरी पुकार सुन ली? वह मरा नहीं था? अखबार की कतरन ही झूठी थी या फिर आतंकवादियों के हत्थे उसी नाम का कोई और व्यक्ति चढ़ गया था? मैं खुशी से उछलता हुआ उसकी और लपका। उसने भी आगे बढ़कर मुझे गले लगाया।

"आज सिगरेट के बिना कैसे?" मैंने आश्चर्य से पूछा, "छोड़ दी क्या?"

"नहीं चुनमुन, तुझसे मिलने आ रहा था सो बिल्कुल जेंटलमैन बनकर आया मैन!" वह अपने विशिष्ट अंदाज में बोला, "क्यों डर गया क्या मुझे देखकर?"

"अरे मैं भूत नहीं हूँ, तू खुश नहीं है क्या कि मैं मरा नहीं?" वह हमेशा जैसे ही हँसते हुए बोला।

"मेरी खुशी को कौन समझ सकता है" मैंने आश्चर्य मिश्रित आल्हाद से कहा।

"हाँ, मैं तो जानता हूँ, साढ़े तीन महीने झेला है तुझे!" मुझसे मिलकर वह बहुत खुश था, "याद है, आरा छोड़ते समय मैंने तुझसे फिर मिलने का वादा किया था?"

भोजन का वक्त था। मैंने हम दोनों के लिए खाना मँगाया और हम लोग बातें करने लगे। उसने बताया कि वह कभी सरकारी अफसर बना ही नहीं था। न ही उसने स्कूल के दिनों के बाद कभी कश्मीर के शालीमार बाग में कदम ही रखा। वह तो सिटीबैंक छोड़कर कलकत्ता में यूनिट ट्रस्ट में चला गया था। खबर पढ़कर उसके घर में भी काफी हंगामा हुआ था। अनिता तो इतनी बीमार हो गई थी कि अगर वह सचमुच जीवित न पहुँचता तो शायद मर ही जाती। बाद में पता लगा कि मुजाहिदीन का शिकार व्यक्ति राजनगर का था भी नहीं। किसी तरह से अखबार की दो खबरें उलट-पुलट हो गई थी। कैसे हुई या फिर उसका ही नाम क्यों आया, इसके बारे में उसको कुछ मालूम नहीं था।

हमने आरा की बहुत सी बातें याद की। वह सभी साथियों के बारे में पूछता रहा। बहुत उत्साह से उसने अपने और परिवार के बारे में भी काफी बातें बताई। उसने अनिता से शादी कर ली थी। बहन की पढ़ाई पूरी होकर पुरुलिया में शादी हो गई थी। माता-पिता कभी राजनगर तो कभी पुरुलिया में रहते हैं। कभी कलकत्ता नहीं आते। उन्हें बड़े शहर और छोटे फ्लैट पसंद नहीं हैं, यह बताते हुए वह थोड़ा उदास हो गया। कुछ देर और

रुककर वह निकल गया। उसकी उसी दिन की कलकत्ता की जहाज की टिकट बुक थी इसलिए वह ज्यादा देर रुक नहीं सकता था।

चलने से पहले हमारे बीच अपने कार्डों का आदान-प्रदान हुआ। उसने मुझे यूनिट ट्रस्ट का अपना कार्ड दिया। कार्ड पर उसका घर का फोन नंबर नहीं छपा था तो उसने मेरी मेज पर सीडी पर लिखने के लिए पड़े एक स्थायी मार्कर को उठाकर उसी से लिख दिया। कुछ ही क्षणों में वह जैसे आया था वैसे ही मुस्कराता हुआ चला गया। मैं उस दिन बड़ा खुश था।

रात में घर पहुँचकर मैंने पत्नी को बड़ी उतावली से दिन की घटना सुनाई। रात में सोने से पहले यूँ ही मैंने अखबार की कतरन देखने के लिए विनोबा के गीता प्रवचन की किताब हाथ में ली। सारी किताब झाड़ी मगर उसमें मोहन की खबर की कतरन नहीं मिली। पत्नी ने भी ढूँढ़ा, मगर कागज का वह टुकड़ा कही नहीं था। उसे सिर्फ एक संयोग समझकर मैंने पत्नी को दिखाने के लिए बटुए में से मोहन का कार्ड निकाला तो पाया कि मेरे हाथ में जो कार्ड था वह बिल्कुल कोरा था - कुछ भी नहीं, स्थायी मार्कर का लाल निशान तक नहीं।

महीने के अंत में जब कैंटीन वाले हर्ष बहादुर ने मेरा महीने भर का बिल दिया तो उसमें हर रोज का सिर्फ एक ही लंच लगा हुआ था। मैंने उसे बुलाकर गलती सही करने को कहा मगर वह अड़ा रहा कि उसने हर दिन मेरे लिए सिर्फ एक ही खाना भेजा है। पूरे महीने में किसी दिन भी मेरे नाम से दो लंच नहीं आए। प्रशांत को भी याद नहीं आता कि मोहन नाम का मेरा कोई पुराना मित्र मुझसे मिलने दफ्तर आया था। राजेश कहता है कि जब वह पिछली बार राजनगर गया था तो मोहन के परिवार से मिला था और इस बात में शक की कोई भी गुंजाइश नहीं है कि मोहन का पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं है। उसने यह भी बताया कि उस घटना के कुछ दिन बाद ही अनिता भी डेंगू जैसी किसी बीमारी का शिकार होकर चल बसी।

वह दिन है और आज का दिन, जब भी समय मिलता है मैं टेलीफोन निर्देशिकाओं में, नेटवर्किंग साइट्स पर, और इंटरनेट पर मोहन के नाम की खोज करता हूँ। जब भी कोई पुराना सहकर्मी मिलता है तो उसके बारे में पूछता हूँ। मगर कभी भी उसके जीवित होने की कोई जानकारी नहीं मिली।

https://www.hindiadda.com/vah-kaun-tha/